Chap- 3

तृतीय अध्याय

सामाजिक दायित्व

सामाजिक दायित्व

प्रो. अर्जुन प्रसाद सिंह 'प्रभात' का कथन है कि ''महान विभूतियों का जन्म मानवता के कल्याण के लिए होता है। वे अपने अलौकिक एवं असामान्य कार्यो से विश्व को उपकृत एवं चमत्कृत कर इतिहास के स्वार्णिम पृष्ठ में अपना नाम छोड़ जाते हैं। डॉ. 'व्यथित' जी भी इसी कोटि की एक महान विभूति हैं जिनका जन्म साहित्य-सृजन के साथ-साथ शोषित-पिड़ित, पद-दलित मानवता के उत्थान के लिए हुआ है। इनका सम्पूर्ण जीवन लोक-कल्याण का पर्याय है। 'व्यथित' जी ने भी अपनी जन्मभूमि उत्तर प्रदेश बापू की जन्मभूमि गुजरात राज्य के अहमदाबाद शहर को अपनी कर्मभूमि बनाया है। सामान्यत: लोग सरल पथ का अनुगमन करते हैं। पर सच्चा साहित्यकार अपनी यात्रा के लिए दुर्गम कंटकाकीर्ण मार्ग को ही चुनता है। हिन्दीभाषी क्षेत्र में जन्म लेकर 'व्यथित' जी ने अहिन्दी भाषी क्षेत्र को अपने कार्य स्थल के लिए चुना। इसके पीछे भी इनकी लोक कल्याण की भावना ही थी। ये हिन्दी भाषा एवं साहित्य की सेवा तथा उसके प्रचार-प्रसार के लिए पूर्णत: कटिबद्ध हैं। इनकी सेवाओं की सच्ची उपयोगिता गुजरात जैसे अहिन्दी भाषी क्षेत्र

में है। यदि इन्होंने किसी हिन्दी भाषी क्षेत्र को अपने कार्य-स्थल के लिए चुना होता तो इन्हें अधिक कठिनाइयों को सामना नहीं करना पड़ता तथा इनका पथ सुगम होता है। पर उससे जनसाधारण का उतना उपकार नहीं हो पाता। गुजरात जैसे अहिन्दी भाषी क्षेत्र में हिन्दी के प्रचार-प्रसार व हिन्दी के प्रति लोगों में आस्था एवं विश्वास जगाने का पूरा श्रेय इन्हीं को जाता है। हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए इन्होंने हिन्दी माध्यम की अनेक संस्थाओं एवं शिक्षण-संस्थाओं की स्थापना की है।''[1]

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी अनेक शिक्षण-संस्थाओं से जुड़े रहे हैं। ये सच्चे अर्थो में शिक्षक हैं। शिक्षा जीवन का मूल है। शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति में अन्तर्निर्हित मानवीय गुणों और विशेषताओं को उजागर किया जाता है। समुचित शिक्षा के द्वारा ही समाज, देश और विश्व का पुनःनिर्माण संभव हो सकता हैं। इसलिए डॉ. व्यथित ने शिक्षण-कार्यको अपनाया। अपने शिक्षण एवं साहित्य सृजन के माध्यम से समाज में वैचारिक क्रान्ति लाकर उसकी विसंगतियों को दूर कर समाज का पुनःनिर्माण करना चाहते हैं। डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी अनेक शिक्षण-संस्थाओं का सृजन एवं संचालन किया है। सम्प्रति ये गुजरात हिनदी विद्यापीठ ओढ़व (अहमदाबाद) के कुलपति हैं। ऐसे महत्वपूर्ण एवं व्यस्त पद पर स्थापित रहकर भी जन सेवा और साहित्यसृजन के लिए समुचित समय निकाल पाना डॉ. 'व्यथित'जी जैसे साधक के लिए ही संभव है। ये गगन विहारी एवं कल्पनाजीवी साहित्यकार नहीं है। इन्होंने जीवन को काफी निकटता से देखा है। ये माटी से जुड़े साहित्यकार है। इनके जीवन में सिद्धान्त एवं व्यवहार दोनों का सामंजस्य है।

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी का जीवन का अधिकांश समय गुजरात में बिता है। इन्हें गुजरात के आदिवासी जीवन में विकास एवं शिक्षा का अभाव दिखाई पड़ा। इन्होंने आदिवासियों एवं पिछड़े लोगों के सम्यक् विकास के लिए कई पाठशालाएँ स्थापित की जिसके लिए इन्हें कई प्रकार की यातनाएँ झेलनी पड़ी। डॉ. जयसिंह

'व्यथित'जी कर्ममार्ग के सच्चे पथिक हैं। इनका संकल्प पर्वत की तरह अचल है। मार्ग की भीषण बाधाएँ भी इनकी गति को रोक नहीं सकती। ये हर संकट और तूफ़ान का सामना करते हुए सदा मानवता की सेवा में संलग्न रहे हैं। ये स्वयं कई बार गुजरात में साम्प्रदायिक दंगों की आग में झुलस चुके हैं। उन विषम परिस्थितियों में भी ये अपनी चिन्ता छोड़कर दूसरों के दुःख से 'व्यथित' होकर पीड़ित मानवता की सेवा करते रहे।

गुजरात हिन्दी विद्यपीठ की स्थापना की पूर्वपीठिका में जिन उद्देश्यों की प्राप्ति की संकल्पना की गई है उनमें हिन्दी भाषा के अन्नयन का ही मूल उद्देश्य निहित है। विद्यापीठ के माध्यम से अहिन्दी भाषी राज्यों में हिन्दी का प्रचार-प्रसार, परीक्षाओं द्वारा लोगों में हिन्दी के प्रति रुचि उत्पन्न करना, हिन्दी में साहित्य सृजन करना, हिन्दी पाठ्‌चक्रमों का संचालन करना, हिन्दी अध्यापकों का प्रशिक्षण तथा हिन्दी के प्रचार-प्रसार करने में विशिष्ट योगदान देनेवाले व्यक्तियों एवं संस्थाओं को सम्मानित करना आदि कुछ ऐसे महत्वपूर्ण बिन्दु हैं। जो हिन्दी को माथे की बिन्दी बनाने की दिशा में सार्थक प्रयास कहे जा सकते हैं। निस्संदेह कुलपति के रूप में डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी ने इन महत्वपूर्ण उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अपना सर्वस्व होम कर दिया और हार नहीं मानी। गुजरात हिन्दी विद्यापीठ हिन्दी की प्रचारक संस्थाओं में मानी जाती है। **एक लेखक ने उल्लेख करते हुए लिखा है –**''हिन्दी प्रचारक संस्थाओं में काशी नागरी प्रचारिणी सभा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा, गुजरात हिन्दी विद्यापीठ अहमदाबाद जैसी करीब बीस संस्थाएँ अखिल भारतीय स्तर पर हिन्दी को राष्ट्रभाषा और राजभाषा की मान्यता दिलाने में कार्यरत है। विद्यापीठ की इस उपलब्धि का सम्पूर्ण श्रेय डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी को है। विद्यापीठ के माध्यम से अब तक अनेक साहित्यकारों को इनकी हिन्दी सेवा के लिए सम्मानित किया जा चुका है और सम्मान की यह प्रक्रिया अनवरत रूप से आगे बढ़ रही है।''[2]

डॉ. जयसिंह'व्यथित'जी का समग्र चिंतन और सृजन समाज के लिए है। उनकी भाषा समाज की भाषा है, उनकी विचारणा सामाजिक समस्याओं से प्रसूत है और उनका सृजन समस्या से व्यवस्था तक का व्यावहारिक और सहज साहित्यिक आरोहण है। **डॉ. जयसिंह'व्यथित'जी का कथन है कि –** 'साहित्य वही है जो हितसाधक, हितसाधक, सहज तथा हृदयगम्य हो। साहित्य समाज के लिए है। समाज का सामान्य आदमी जिस भाषा को समझे, जो उसके मानस-पटल पर अमिट छाप छोड़ जाय और उसे ऊपर उठने, आगे बढ़ने की शक्ति प्रदान करे, वही साहित्य है।''[3]

जब मंदिर-मस्जिद विवाद उग्र रूप धारण कर भारतीय समाज के भीतर से साम्प्रदायिकता और संकीर्णता का विष निकाल बाहर फेकने के लिए जिन साहित्यकारों की लेखनी अग्रसर होती है, उनमें डॉ. जयसिंह 'व्यथित' का नाम अति विशिष्ट है। डॉ. जयसिंह'व्यथित'जी 'कैकेयी के राम' खण्ड-काव्य में रामकथा को मानवीय बनाकर कुछ ऐसे मनोवैज्ञानिक कौशल के साथ प्रस्तुत किया है कि 'राम' किसी वर्ग विशेष, स्थल विशेष या कालखण्ड विशेष की धरोहर न रहकर सम्पूर्ण मानवता की सार्वकालिक चेतना बन जाते हैं। सहज सरल प्रवाहमयी भाषा शैली के कारण यह काव्यकृति भारत के तत्कालीन आन्दोलित हृदय को सकारात्मक दिशाबोध कराने में सर्वथा समर्थ दिखाई देती है। पीड़ित मानवता के सजल संवाहक और सबल उद्धारक डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी के काव्य की सरलता, सहजता एवं बोधगम्यता के विशे में **ओम प्रकाश मिश्र 'ओमनीरव' लिखते हैं कि –**

''बुद्धि हृदय की बनी अनुचरी, तर्क भावना का अनुचर।
व्यथित हृदय की भावभूमि से, निकली जब कविता निर्झर।।''[4]

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी की नारी के प्रति उदात्त भावना वास्तव में दलित, शोषित और पीड़ित मानवता के प्रति उद्भूत व्यापक करुणा का ही एक प्रतिबिम्ब

है। **सुरेशचन्द्र शर्मा** ने उनके हृदय की इस तरलता को अनुभव करते हुए कहा है- '' डॉ. 'व्यथित'जी की कृतियों में उपवन की खुशबू नहीं, समाज की पीड़ा, वेदना, दर्द समाहित है।''[5] प्रबन्ध-काव्य 'दलितों का मसीहा' में उन्होंने अपने भीतर की इस करुणा को स्थल-स्थल पर शब्दायित किया है। इस काव्य कृति के लिए डॉ. आम्बेड़कर राष्ट्रीय अस्मिता दर्शी साहित्य अकादमी उज्जैन द्वारा उनका **'कविसंत रैदास-कविरत्न'** की मानद् उपाधि से अलंकरण एक यथार्थ के सत्यापित और विज्ञापित करने का सार्थक प्रयास है। डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी का हृदय दलितों की पीड़ा से पीड़ित है। इसीलिए के निस्पृह सेवा से दलितोद्धार के लिए साहित्यिक एवं सामाजिक मंचों को अपनी कर्मभूमि बनाते रहे हैं।

व्यथित जी दलित चेतना को बहुत विस्तृत आयाम देते हैं और उसका मूल प्रवर्तक महात्मागाँधी को मानते हैं - मेरे विचार से 'आज का सम्पूर्ण भारतीय बाङ्मय दलित-चेतना से ओत-प्रोत है। मानव को मानव से जोड़ने, शोषण-उत्पीड़न के खिलाफ इन्कलाबी झण्डा फरकाने की साहित्यकारों में जबरदस्त होड़ सी लगी हुई है। आज जितना कुछ भी लिखा-पढ़ा जा रहा है उसमें गाँधी चिन्तन की महक है। जहाँ शोषण उत्पीड़न, अन्याय, अत्याचार और असमानता है, वहाँ उस मुट्ठीभर हड्डियों वाले अर्धनग्न फकीर की आत्मा साहित्यकारों की कलम के सहारे चीत्कार कर रही है।'

आज के युग में किसी कलमकार के लिए कोई निर्णायक बात बिना किसी लाग-लपटे के कहना कठिन है। इसे कोई मुक्तभोगी ही समझ सकता है, तथापि डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी खुले शब्दों में 'दलित-साहित्य' की सतही राजनीति का खण्डन अपनी चिर परिचित शैली में निरन्तर करते रहे हैं। राजनीति के पक्षा पक्षी के पचड़े में पड़कर साहित्य को कीचड़ में घसीटनेवाले तथा कथित साहित्यकारों के दलित साहत्यि के भ्रामक विचार से हमें बचना है। साहित्य जोड़ने का काम करता है, उसे जोड़ने का काम करने दीजिए। समाज में तोड़ने वालों की कमी

नहीं। जाति-धर्म, पंथ-संप्रदाय, छूत-अछूत के नाम से देश को खण्डित करनेवालों का एक बहुत बड़ा समुदाय अपने संगठित बल पर भारतमाता की तस्वीर को बिगाड़ने पर तुला हुआ है। हमें उनके लिए समिधा का कार्य नहीं, बल्कि शमन का कार्य करना है। सत्य का ऐसा कड़ुवा घूँट पीने-पिलाने का सत्याहस बिरले कलमकारों में ही देखने को मिलीत है।

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी लिखते हैं –

''सत्य बहुत ही कड़ुवा होता, और कष्ट भी देता है, उसे घूँट जो गले उतारे, बिरला ही में जग होता है।''[6]

सामाजिक कुरीतियों पर निर्द्वन्द्व और निरपेक्ष भाव से कड़ा प्रहार करने की दृष्टि से डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी तो फक्कड़ संत कवि कबिर का युगीन संस्करण कहा जा सकता है। होली हो या दीपावली, वे स्वस्थ परम्पराओं में फैले प्रदूषण को अपनी स्पष्टवादी लेखनी से निरन्तर दुहराते रहे हैं। दीपावली के अवसर पर सामाजिक विकृति के रहते पारम्परिक बाह्याडम्बर से क्षुब्ध पीड़ित व्यथित-हृदय के उद्‌गार दृष्टव्य हैं- ''आज हमारे देश का वातावरण इतना विषाक्त होता जा रहा है कि इन त्योहारों की गरीमा और स्वरूप पर प्रश्न-चिन्ह सा लगता जा रहा है। ईर्ष्या और द्वेष की अग्नि ने लोगों के तन और मन के जला डाला है। जाति, धर्म, सम्प्रदाय और वोट की राजनीति ने दिलों में दीवार पैदा कर दी है। स्वार्थ और संकीर्णता की आँधी ने प्रेम, बन्धुत्व और मनुष्यता को झकझोर कर रख दिया है। एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को निगल जाने के लिए तैयार हो गया है। एसी विडम्बना और विद्रुपता भरी स्थिति में हमारी यह दीपावली कितनी सार्थक होगी यह एक यक्ष प्रश्न बन गया है।''[7]

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी का मानना है कि धर्म प्रवर्तक, ऋषि-मुनि, संत-महात्मा, पीर-पैगम्बर अपने-अपने देश-काल और परिस्थितियों की मर्यादा के परिप्रेक्ष्य में प्रयत्नशील रहे और उसकी जो सर्वोत्तम अनुभूति या उपलब्धि विश्व

कल्याण के रूप में उपलब्ध हुई उसे ही उन्होंने ग्रन्थस्थ कहा है, जिसका अनुशीलन हम धर्म के सम्बंध में सदियों से करते आ रहे हैं। तथापि वे धार्मिक वचनों को सार्वकालिक सत्य नहीं मानते हैं। डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी की नीर-क्षीर दृष्टि में सम्भव है कल का सत्य आज का सत्य न भी हो। अत: उनका सुस्पष्ट कथन है कि ''हमें लकीर का फकीर नहीं बनना चाहिए। धर्म-जनून ही दूसरे शब्दों में लकीर का फकीर है। यही धर्म-जनून और आतंकवाद आज की दुनिया का सबसे बड़ा हित शत्रु है। हमें इससे बचना चाहिए। कुटिल धार्मिक पाखण्ड का खण्डन करने में निर्भीक व्यथित जी का मानना हैं कि - धर्म के नाम पर मानवता को प्रतिड़ित करना सबसे बड़ा अधार्मिक कार्य है।''[8]

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी बहुभाषाविद् हैं। संस्कृति की चासनी में बोली जानेवाली गुजराती में तो उन्होंने 'दलितों ना मसीहा' प्रबन्ध-काव्य तथा 'बालकृष्ण' संज्ञायित खण्ड-काव्य का प्रणयन भी किया, फिरभी अनेक कारणों से उन्हें हिन्दी भाषा से विशेष आत्मीयता रही है। प्रथम यह उनकी मातृभाषा है, दूसरे यह कि गाँधीजी हिन्दी के परम हिमायती थे और व्यथित जी गाँधीजी की मान्यताओं के प्रबल हिमायती हैं। गुजरात में नाममात्र का हिन्दी प्रचार-प्रसार देखकर इनमें उसके उन्नयन की इच्छा जागी। सीमित संसाधनों एवं जन-सहयोग के बलबूतें इन्होंने हिन्दी प्रचार-प्रसार हेतु विविध संस्थाओं की स्थापना की, जिससे कि गुजरात की साहित्य अन्यान्य अहिन्दी प्रदेशों में भी हिन्दी प्रचार किया जा सके, हिन्दी में नवलेखकों की खेप सतत रूप से तैयार होती रहे जबकि प्रौढ़ रचनाधार्मियों को उनकी हिन्दी सेवा की उत्कृष्टता के आधार सम्मानित किया जा सके।

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी ने 'रैन बसेरा' नाम की हिन्दी की एक मासिक पत्रिका का प्रकाशन भी प्रारंभ किया। इस सामयिकी में लेखन की लगभग समस्त विधाओं की रचनाओं को समुचित स्थान मिलात है, जन-सामान्य की जिन्दगी से जुड़े रचनाकारों को पत्रिका में स्थान मिलता है चाहे वह देश के किसी भी अंचल

से सम्बन्धित क्यों न हों।

अभी तक के इतिहास में किसी व्यक्ति द्वारा ग्रामीण सहित्यकारों की ओर ध्यान नहीं दिया गया है। डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी द्वारा 'रैन बसेरा' मासिक पत्रिका के माध्यम से इस ओर लेखकों का ध्यान आकर्षित किया गया। **'ग्रामीण साहित्यकारों की दशा और दिशा'** विषय देकर एक राष्ट्रीय संगोष्ठी का सफल और सार्थक आयोजन किया। 'रैन बसेरा' मासिक पत्रिका में देश के प्रबुद्ध लेखकों के विचारों का प्रकाशन किया गया। डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी ने स्वयं जुलाई 1997 के अंक में इस विषय पर अपने विचार भी व्यक्त किये हैं और ऐसे महत्वपूर्ण सुझाव दिये है जो विचारणीय है। वास्तव में यदि इन सुझावों को क्रियान्वित किया जावे तो ग्रामीण साहित्यकारों द्वारा सृजित साहित्य प्रकाश में आ सकता है और निश्चित ही इससे हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य की श्रीवृद्धि होगी। ऐसे बहुत से कारण डॉ. व्यथित ने अपने लेख में व्यक्त किए हैं जिस कारण ग्रामीण साहित्यकार और उसका साहित्य परिस्थितियों की भीषण मार से टूटकर छिन्न-भिन्न हो जाता है।

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी एक स्वतंत्र चिंतक है। वह समाज और उसकी पारिवारिक व्यवस्थाओं के टूटने से व्यथित होता है। वह जैन मनीषियों के इस मत से संतृष्ट नहीं होता कि - **'जीओ और जीने दो'**। डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी अपना स्वतंत्र चिंतन अभिव्यक्त करते हुए कहते हैं - **'जीओ और जिलाने के लिए जिओ।'** इस मत में स्पष्ट रूप से परमार्थ और जीने को सार्थकता दिखलाई देती हैं। किसी वयक्ति का जीना तभी सार्थक हो सकता है जब उसके जीने से किसी से किसी अन्य को जीने में सहायता मिलती हो। डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी के 'रैन बसेरा' मार्च 98 अंक के सम्पादकीय का निम्नांश उल्लेखनीय है।

पर्यावरणविद् एवंम् अर्थशास्त्री ही पर्यावरण एवं जन संख्या वृद्धि से चिन्तित हों ऐसी बात नहीं, एक सजग साहित्यकार होने के नाते डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी

जैसा व्यक्ति भी चिन्तित होता है। यह समस्या आज़ किसी एक देश की समस्या न होकर संपूर्ण विश्व की समस्या बन गई है। जनसंख्या वृद्धि होने से व्यक्तियों की भोगवादी प्रवृत्ति बढ़ी है और अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए उचितानुचित का ध्यान न देकर प्रवृत्ति का अंधा शोषण किया है। एक वैज्ञानिक जैसा दृष्टिकोण अभिव्यक्त करते हुए **डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी जनवरी 1998 के सम्पादकीय में लिखते हैं –**

''पर्यावरण संरक्षण और प्रदूषण का प्रश्न अब किसी देश विशेष की समस्या नहीं बल्कि समस्त विश्व के अस्तित्व का प्रश्न बन गया है। आकाश में ओज़ोन की पर्त नष्ट हो रही है। भौगोलिक परिवर्तन के साथ ही साथ वातावरण में भी भयंकर परिवर्तन आ रहा है, जो मानव जीवन एवं प्राणी सृष्टि के लिए खतरे की घंटी बजा रहा है। जन संख्या वृद्धि और बढ़ते औद्योगीकरण के विषय चक्र से जब तक छूटने का कोई ठोस व कठोर कदम नहीं उठाया जायगा, तब तक विश्व के माथे पर विनाश के जो काले विकराल बादल मँडरा रहे हैं वे खत्म नहीं होंगे।''[९]

राजनीति के नैतिक पतन के साथ-साथ समाज में अन्य वर्गो का भी नैतिक पतन हुआ है। शासकीय कर्मचारी वर्ग को राजनीति ने अपना एक हथियार बना लिया है, परिणाम स्वरूप कर्मचारियों के विभिन्न संगठन आये दिन हड़ताल आदि कर राष्ट्र को हानी पहुँचाते हैं। जुलाई 97 के 'रेन बसेरा' अंक के सम्पादकीय में डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी ने बड़ी गम्भीरता से इसे अभिव्यकत किया है तथा गाँधीजी द्वारा अपनाया गया सविनय अवज्ञा और सत्याग्रह का आज किस प्रकार दुरुपयोग हो रहा है, इस ओर ध्यान आकर्षित किया है। एक आदर्श रचनाकार की लेखनी सामाजिक बुराईयों को शब्दाकित करती है और विशेष रूप से दुखी है। शिक्षा जगत में भी आंतकवाद फैल रहा है। जून 98 के सम्पादकीय में उत्तर प्रदेश के सुलतानपुर के बेलहरी जनता इण्टर कालेज के एक छात्र द्वारा प्राचार्य सुप्रसिद्ध जनवादी कवि श्रीमान बहादुरसिंह की हत्या से दुखी होकर **डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी**

लिखते हैं –

''अब इस वर्तमान परिवेश में न गुरू-गुरू रह गया है और न विद्यार्थी-विद्यार्थी ही। शिक्षक वेतन भोगी कर्मचारी बन गया है और विद्यार्थी स्वेच्छाचारी। कोई किसी को कहने या समझाने वाला नहीं रहा है। परिणाम स्वरूप छोटे-छोटे बच्चों से लेकर बड़े-बड़े विद्यार्थी अब पाठ्यपुस्तकों, कलम और कागज से कम असलहों से अधिक स्नेह करने लग गये हैं। आये दिन छुरा, चाकू, कट्टा, बदूंक या बम जैसी घटनाएँ शिक्षालयों में आम बातें हो गई है।''[10]

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी की लेखनी क्रिकेट जैसे खेल के सम्बन्ध में भी उठती है, जो हमारे युवकों और नागरिकों को निठल्ला बना रही है। देश का युवा वर्ग ही नहीं बड़ी संख्या में सरकारी कर्मचारी एवं प्रबुद्ध व सामान्य नागरिक सब काम काज छोड़कर इस ओर घंटो व्यर्थ कर देते हैं। रैन बसेरा मासिक पत्रिका जुलाई 1998 के अंक के संपादकीय में देश का ध्यान इस ओर आकर्षित करते व्यथित जी लिखतें हैं -

''आज जरूरत है इस देश को पुरुषार्थ की, कठिन परिश्रम की और महेनत की न की किसी ऐसे निठल्ले खेलों की जो देश और समाज की काहिली एवं कामचोरी को बढ़ावा देते हैं।''[11]

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी एक साधक, सर्जक, चिन्तन, मनन और विचारणा के युग-प्रतीक ही नहीं वरन् कुशल सम्पादक और राष्ट्रीय चेता व्यक्ति भी हैं। इनके हृदय में समाज और राष्ट्र की पीड़ा का स्वर गूंजता है। उनके पत्र-सम्पादकीय में चिन्ताकुलता मुखरित होती है। एक संपादकीय में वह हमारे अस्वस्थ लोकतंत्र की स्वस्थता के अशुभ संकेत के प्रति जहाँ चिन्ताकुल होते हैं, वहीं अंधकार में आलोक की संभावनाओं से वह आशान्वित भी होते हैं। वह लौह-पुरुष गुजरात गौरव सरदार वल्लभभाई पटेल के चार सौ छियालीस देशी-रियासतों के भारत महासंघ में विलय और भारतमाता को शोषण मुक्त होने, देश के नये विकास,

विश्वास और नवनिर्माण के भव्यभवन से राष्ट्र को आश्वास्त करते हैं। डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी आज के नेताओं के भोगी चरित्र, लोकतंत्र, गरीबी एवं बेरोजगारी के नाम पर शिखंडी की तरह उपयोग कर उसकी आड़ लेकर मनमानी लूट चलाने लगे, को उजागर करते हैं जो उनकी सम्पादकीय साहसिकता तथा जागरूकता का प्रमाण है।

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी की लेखनी इसी भारतीय संस्कृति को प्रवाहमान एवं उत्कीर्ण करने में रत है। संपादकीय के उपर्युक्त उद्धारण में त्याग की जो चर्चा की गई है वह ऐसा कपास है, जिससे भारतीय संस्कृति के ताने और बाने दोनों का निर्माण होता है। त्याग आराधना है, त्याग तपस्या है, त्याग ईश्वर को पाने का मार्ग है और मानव जीवन की निर्धारित सांसो का सर्वाधिक मूल्यवान उपयोग है। जैने मुनि त्याग की अप्रतिम मूर्ति होते हैं। उनकी महानता और दिव्यता का मूल आधार केवल त्याग है। भारतीय संस्कृति त्याग के बीज से ही पल्लवित और पुष्पित होती है तथा इसी से कल्याण का मार्ग प्रशस्त करती है । डॉ. जयसिंह 'व्यथित' के चिंतन, लेखन और व्यवहार में संस्कृति के इस बीज का अंकुरण, प्रस्फुटन एवं पल्लवन स्पष्ट दिखाई देता है।

आज के हिन्दी साहित्य के स्वयंभू ठेकेदारों ने जाति-धर्म की तरह साहित्य को भी दलित एवं सवर्ण में बाँट रखा है और जिन सवर्ण लेखकों ने अपनी रचनाओं में दलितों की आवाज बुलन्द की जैसे-प्रेमचन्द, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' आदि, इन्हें जाति से दलित लेखक, दलित लेखक नहीं मानते हैं। उनकी दृष्टि में जो जाति से दलित लेखक हैं, सही मायने में वही दलित साहित्य लेखक हैं। दलित साहित्य को भी समाज की तरह सर्वण और दलित में बाँटने की प्रकिया का उनका विरोध समीचीन है। आखिर जब साहित्य का मतलब ही है सबका हित करनेवाला, चाहे इंसान किसी भी जाति-धर्म वर्ग का हो तो उस जन कल्याणकारी साहित्य को सवर्ण और दलित में बाँटना कत्तई उचित नहीं है। जैसे समाज में सवर्ण और दलित

के मध्य संघर्ष, कलह, ईर्ष्या-द्वेष हैं, वैसे ही साहित्य में भी दलित और सवर्ण को लेकर तनातनी बढ़ जायेगी। जो साहित्य सर्व जन हिताय है। वही अपनी व्यापक दृष्टि छोड़कर सिर्फ अपने वर्ग-जाति तक सीमित हो जाएगा। जिसके कन्धे पर समाज को सही मार्ग पर ले चलने का दायित्व है, वही समाज को मार्ग में भटकाने का कार्य करने लगेगा।

सामाजिक और राष्ट्रीय विचारों से ओत-प्रोत डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी ने गद्य एवं पद्य में पौराणिक एवं आधुनिक विषयों को आत्मसात कर साहित्य की पुष्पसलिला गंगा को कृतियों के जितने पुष्प समर्पित किये हैं, उसका एक इतिहास बन गया है। इनके काव्य में दलितों शोषितों की पीड़ा, मानवता का गान, साम्प्रदायिकता का प्रबल विरोध, गरीबी, भुखमरी और बेरोजगारी जैसी भयंकर समस्याओं के विरोध में सृजनात्मक प्रहार जैसी बातें उभरकर समक्ष आई हैं। **डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी ही शब्दों में –** ''साथर्क साहित्य सामाजिक विषमता के समूल उन्मूलन का भगीरथ प्रयास करता है।''[12]

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी मानते हैं कि साहित्य का कार्य सामाजिक समर का सूत्रपात करना नहीं है, वह तो सामाजिक समर मूल कारणों का शोधन कर धीरे-धीरे समायोजना एवं सद्भावना को पल्लवित और पुष्पित करना है, कर्तव्यविमुख को कर्तव्य परायण बनाना हैं, सामाजिक विषमता का समूल उन्मूलन करना है।

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी की रचनाओं की पृष्ठभूमि पौराणिक एवं आधुनिक दोनों ही रही है। ऐसे मनस्वी, ओजस्वी महापुरुष जो जन सेवा और राष्ट्रीय स्वाभिमान के लिए अपना स्वार्थ त्याग कर समाज की सेवा करते आए हैं या कर रहे हैं। व्यथितजी की लेखनी ने उनकी ही यशगाथा गाई है। इस क्रम में 'राघवेन्द्र' और 'कैकेयी के राम' में राम, 'बालकृष्ण' में कृष्ण, 'दलितों के मसीहा' में डॉ. आम्बेड़कर, 'नेताजी' में सुभाषचन्द्र बोस तथा 'घनश्याम विजय' में स्वामी हरिनारायण उल्लेखनीय हैं।

हमारी संस्कृति को अक्षत रखने के लिए आधुनिक काल के मानक मनीषियों को भारत की प्राचीनता और इस प्राचीन देश के अति प्राचीनकाल में राष्ट्रीय चेतना के उन्मेष का उद्भेदन करना जरूरी है। व्यथित जी इस क्षेत्र में भी हमारी संस्कृति के सजग प्रहरी के रूप में निर्णायक भूमिका का निर्वाहन कर रहें हैं। भारत की प्राचीनता और हमारी संस्कृति का प्रधान उपाधान विभिन्न जातियों की समन्वयशीलता को उद्घोषित करते हुए **कवि गुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपनी प्रसिद्ध कविता 'भारत तीर्थ' में लिखा था –**

''हेथा आर्य हेथा अनार्य, हेथा द्रविड चीन, शक,
हुन दल, पठान, मुगल, एक देहे होलो लीन।''[13]

अर्थात् यहाँ आर्य, अनार्य, द्रविड, शक, हुण, पठान, मोगल एक देह में विलीन होकर समन्वय शील हो गये। इस भारत को पुष्पतीर्थ और महामानव के सागर तट से तुलना करते हुए वे इसी कविता में लिखते हैं-

''केहू नाहि जाने कार आह्वाने कतो मानुषेर धारा।
दुर्वार स्त्रोते ऐलो कोथा हते, समुद्रे होलो हारा।।''[14]

यानी कोई नही जानता असंख्य मनुष्यों की कितनी अविरल धाराएँ किस के आह्वाहन पर भारत के पुण्यतीर्थ के महामानव के इस समुद्र में निमज्जित हो गई।

आधुनिकता के रंग में रंगे कुछ विद्वान राष्ट्र चेतना को पाश्चात्य राजनीति की देन बताते हैं लेकिन हमारे प्राचीनतम वैदिक ग्रंथ **'अथर्व वेद'** में भी प्रच्छन्न रूप में ही सही, राष्ट्र और राष्ट्रचेतना का आभास मिलता है। **'अथर्व वेद' के भूमि सूक्त में द्यौ में पिता, पृथ्वी में माता, 'माताभूमि पुत्रोडहं पृथिव्या:'** सूत्र इस बात का उद्घोषक है कि हमारे पूर्वजों को राष्ट्र चेतना का सम्यक ज्ञान था। इस वेद के पूर्व के 'ऋग्वेद' में अम्भुण ऋषि की कन्या वाकभृणि ने 'अहं संगमनी वसूना' इत्यादि सूत्रों में राष्ट्रशक्ति या **Collective power of the state** को वर्णित किया है। 'विष्णु पुराण' संस्कृत वाङ्मय के पुराण युग का एक प्रसद्धि ग्रंथ है। इस ग्रंथ में

भारत वर्ष की भौगोलिक सीमा और इसमें अवस्थान करने वालो का समुचित वर्णन है।

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी का समाज-सेवी व्यक्तित्व समाज में व्याप्त विषमताओं की पीड़ा से व्यथित होकर इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि जब तक शक्ति और शक्तिमान के बीच एकरसता की स्थापना नहीं होगी तब तक सामाजिक समरसता की कल्पना का साकार होना नितान्त असंम्भव है। इस लक्ष्म को प्राप्त करने के लिए उन्हें अनेक महत्वपूर्ण दायित्वों का निर्वाह करना पड़ा, अनेक विसंगतियों से जूझना पड़ा और अदम्य साहस व उत्साह का परिचय देते हुए अनेक विघ्न बाधाओं से निपटना पड़ा।

''सर्व भूत हिते रता:'' की पूत भावना से भरपूर हृदय की प्रेरणा से जब व्यथितजी ने समाज में व्याप्त विषमता के समूल उन्मूलन का भगीरथ प्रयास आरम्भ किया तो उनकी आत्मा को इस समय प्रभूत-पीड़ा का अनुभव हुआ जब मानव-मानव के बीच भेद-भाव रखते हुए, समाज का एक वर्ग दूसरे वर्ग के प्रति घृणा, अनादर और अवहलना की भावना से भरकर अति अमानवीय व्यवहार करता हुआ दिखाई दिया। इस पीड़ा से मानवता को मुक्ति दिलाने के लिए डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी ने भगवान श्रीराम के अछूतोद्वारक आचरण का अनुकरण करते हुए बिहार प्रान्त के खोपैती ग्रामवासी झारीराम हरिजन के हाथ से नमक-रोटी खाकर समाज के ढोंगी धर्माधिकारियों को खुली चुनौती दी। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी की जन्मभूमि गुजरात प्रान्त के आदिवासी क्षेत्रों में शिक्षा की ज्योत जलाते हुए उन्होंने आदिवासी बन्धुओं के प्रति किए जाने वाले हुए अत्याचारों के विरुद्ध विद्रोह के लिए ललकारते हुए उन्हें जातीय विषमता की कठोर कारा को छिन्न-भिन्न करके संकीर्णताओं के बाहर निकल आने की सशक्त प्रेरणा प्रदान की थी।

इसके लिए उन्होंने नाना यातनाओं से जूझते हुए आदिवासी क्षेत्रों में कई पाठशालाएँ स्थापित की। 'नेताजी' खण्ड-काव्य के माध्यम से भी उन्होंने राष्ट्र की

युवाशक्ति को जातीय बन्धनों को विच्छिन्न करके राष्ट्रमन्दिर की सेवा का मूलमंत्र दिया-

''जाति-पांति की बात नहीं थी, राष्ट्रधर्म ही प्यारा था।
जय भारत जय हिन्द पंडितों, मुल्लाओं का नारा था।।''[15]

सामाजिक समरसता के मार्ग की एक अन्य बाधा धार्मिक व साम्प्रदायिक उन्माद को दूर करने के प्रयास में व्यथित जी को अनेक बार वीर हनुमान की तरह, अट्टहास करती हुई, महामृत्यु के कराल गाल में प्रवेश करने का अद्भुत साहस दिखाना पड़ा है। कुटिलों के कूट-नीति यन्त्र से संचालित अनेक साम्प्रदायिक दंगो की लपलपाती लपटों में घिरे हुए निरीह प्राणियों की मातृवत सेवा तथा मृत मानवों को श्मशान व कब्रस्तान पहुँचा कर उनकी अन्तिम क्रिया करते हुए वीतरागी डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी को देख-सुनकर किसी भी श्रेणी की मानव-जाति श्रद्धा और भक्ति से भाव विह्वल हो जाते हैं।

यह दीग़र बात है शेषण को चुनाव सुधारों में पूर्ण सफलता के स्थान पर आंशिक सफलता ही प्राप्त हुई क्योंकि भ्रष्ट व्यवस्था के लाभुकों ने उनके मार्गमें अनेक बाधाएँ उपस्थित कीं। साथ ही जिम्मेदार बुद्धिजीवियों में से अधिकांश ने सुधार अभियान में अपेक्षित सहयोगात्मक रूख भी नहीं अपनाया क्योंकि उन्हें सुधार हो पाने का कतई विश्वास नहीं था। वैसे निराश-हताश एवं यथास्थितिवादी बुद्धिजीवियों को भी डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी बौद्धिक जड़ता त्यागकर लोकतंत्र को स्वास्थय लाभ कराने में सहयोग के लिए समय रहते ललकारता था -

''एक तरह से भय-भ्रष्टाचार के इस राष्ट्रीय कैंसर के लिए यह (शेषण की नियुक्ति) 'इलेक्ट्रीक शोक' का काम हुआ। हवा अनुकूल है, जरूरत है सिर्फ़ पहल करने की । यही हमारे अपने लोकतंत्र की स्वस्थता के शुभ संकेत है। हमें भी आपने लोकतंत्र की स्वस्थता के लिए आशान्वित होकर इंकलाबी झंडा उठाने के लिए कटिबद्ध होकर आगे आना होगा।''[16] ('रैन बसेरा' अगस्त 1996)

सत्साहित्य ही समाज के लिए कल्याणकारी होता है। वृति के अनुसार ही व्यक्ति का चरित्र बनता है तथा चरित्र के अनुसार ही वह अपनी अभिव्यक्ति करता हैं। तीनों गुणों सत्, रज एवं तम के अनुसार ही साहित्य की कोटि निर्धारित होती है। उदाहरण के तौर पर जो कवि या लेखक रजो गुण प्रधान होगा उसका साहित्य उत्तेजनात्मक एवं विद्रोही प्रकृति का होगा। इसी साहित्य को आधार मानकर **"pen is mighteter than that sward."** ऐसा कहा गया है। सतो गुण प्रधान लेखर या कवि सद्साहित्य-उपदेश परक एवं गम्भीर साहित्य की रचना करेगा। इन दोनों से अलग तमो गुण प्रधान साहित्यकार की बात न की जाय तभी अच्छा है।

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी की आत्मा का एक स्वर है-**'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता'**। जगत जननी नारायणी ही नारी ही आदिशक्ति का स्त्रोत है। भारतीय जीवन के उत्कर्ष में नारी की भूमिका का महत्व स्वीकार करना ही भारतीय संस्कृति का गौरव है। समता मूलक भारती संस्कृति ने नारी शक्ति को विशिष्ट सन्मान दिया है। सारे भारत में **'नारी तू नारायणी'** की पूजा व वन्दना करना भारतीय जन का परम कर्तव्य रहा है, फिर भी नारी पर अत्याचार होते ही रहे।

जहाँ हिन्दू नारी शक्ति की पूजा करता है वहाँ कन्यादान की विकृतियों के जाल में बुरी तरह फसा है। कन्यादान अब कन्यादान मात्र नहीं रहा, बल्कि मोल तोल का सौदा हो गया है। वर बिकाऊ बैल है। नीलामी होती है, जो ऊँची बोली लगाता है, उठा कर ले जाता है। शादी के बाजार में दूल्हें कैसे बिकते हैं, यह शर्मनाक हैं। दहेज रूपी दानव, जगत पूज्य मातृ शक्ति को अपमानित कर, तड़पा-तड़पा कर बेमौत मारकर, गौरव और शान समझा जाता है तथा दहेज लेना एक महान पुण्य कार्य। यहाँ कलंक भी गौरव बन गया। अत: व्यथित जी दु:खी हृदय से प्रभू से प्रार्थना करते हैं, **सबको सन्मति दे भगवान, सबको सम्मति दे भगवान।**

भारतीय जीवन शैली में विश्व-बन्धुत्व की भावना का विशिष्ट महत्व है। **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** का नारा लगाकर, विश्व में सर्वश्रेष्ठ नागरिक होने का हम गर्व

करते हैं। हम भूल जाते हैं कि **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** की भावना का मूलाधार संयुक्त परिवार नामक एक लघु संस्था है। कुटुम्ब जुड़ेगा तो समाज जुड़ेगा। समाज जुड़ेगा तो राष्ट्र जुड़ेगा। यदि राष्ट्र जुड़ेगें तो विश्व एक कुटुम्ब बनेगा। वसुधैव कुटुम्बकम् की कल्पना अति सुन्दर है डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी एकाकी परिवार को ध्येय की सबसे बड़ी बाधा मानते हैं। सयुक्त परिवार की सुरक्षित, सहयोगी, स्नेहपूर्ण शैली को तिलांजलि दे, हम एकाकी परिवार की जीवन शैली को अपना रहे हैं, क्योंकि आधुनिक पढ़े-लिखें युवक-युवती स्वतंत्र एवं स्वच्छन्द जीवन यापन में, स्वर्ग के समस्त सुखों को भोगने को मूर्खता पूर्ण कल्पना करते हैं। वे अहं स्वार्थ, ना समझी, असहिष्णुता के शिकार है। कथनी और करनी का अन्तर भयावह है। हम गर्व करते हैं वसुधैव कुटुम्बकम् के भावना की सर्वोत्तम धरोहर पर और गीत गाते हैं, विश्व-बन्धुत्व की विरासत की, पर अपने सगे बन्धु-बान्धव के साथ एक परिवार में रह नहीं सकते, क्योंकि तंग दिल हो गए हैं, सहिष्णुता समझदारी, त्याग व सेवा की भावना का अकाल पड़ गया है और बुजुर्गो के प्रति आदर, कर्तव्य, स्नेह भूल गए हैं।

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी के विचार में संयुक्त परिवार के लिए सहनशीलता, पारस्परिक सहयोग एवं समझदारी का स्नेह पूर्ण मसाला ही पर्याप्त नहीं है, अपितु परिवार का मुखिया भी विवेकशील, उदार एवं समदर्शी चाहिए जैसे-

''मुखिया मुख सो चाहिए, खान-पान को एक।

पालहिं पोसहिं सकल अंग, तुलसी सहित विवेक॥''[17]

परिवार उपर्युक्त सद्गुणों से सम्पन्न हो, इसके लिए अच्छे संस्कारो की फसल चाहिए। ज्यों अच्छी फसल पाने के लिए, कृषक महीनों कठोर श्रम करता है, त्यों शुभ, उत्तम, कल्याणकारी, संस्कारों की प्राप्ति हेतु गहन साधना अविनार्य है। स्वस्थ चिन्तन सात्विक आचार-विचार व आहार-विहार साधना के प्रथम चरण हैं। जो जीवन उपवन में पौरुष-पुरुषार्थ, विनय-विवेक, प्रेम-दया, सेवा-परोपकार,

यम-संयम, तप-त्याग के सुमन खिलाकर नैसर्गिक सुरभि से समाज एवं विश्व को महका देते हैं। सादा जीवन, उच्चविचार इसी साधना का उपनाम है। हमारी उदात्त परम्परा को पाश्चात्य भौतिकवादी संस्कृति ने ग्रहण लगा दिया। हमारा संत समाज भी पंच-सितारा संस्कृति के मोह जाल में जकड़ गया। अब आश्रम नहीं रहे, वे प्रासाद हो गए। आत्मिक सुख-शान्ति हेतु जन्मी हमारी संस्कृति की भव्य इमारत जर्जरित होकर खाक में मिलती जा राही है, क्योंकि सत् रज व तम में मात्र रज और तम जीवित हैं, जो राज्य कर रहे हैं। संस्कार शब्द केवल शब्द कोष की धरोहर रह गया। परिणाम स्वरूप, वृद्धाश्रम, विधवाश्रम, अनाथश्रम और नारी निकेतन की भरमार हो गई है। ये मात्र संयुक्त परिवार की परम्परा के ध्वस्त होने के परिंणाम हैं जो बड़े बूढ़ों असहाय माँ बहनों, अपाहिजों, अनाथों, अशक्त नर-नारियों को नरक जैसी जिन्दगी जीनी पड़ रही है।

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी भारतीय समाज को पाश्चात्य सभ्यता व संस्कृति के मृग जाल से मुक्त कराने के लिए अपनी सशक्त लेखनी उठाई है। छिन्न-भिन्न होती कौटुम्बिक परम्परा उनके मानस को सहस्त्र सर्प-दंश सी पीड़ा देती है। भारत की अनमोल धरोहर, सादा जीवन, उच्च विचार को पाश्चात्य को भौतिकवादी कलुषित सभ्यता निगल जाय या हानि पहुँचाए ये उन्हें सहन नहीं। श्री जयसिंह 'व्यथित' जी भारतीय संस्कृति की अस्मिता एवं आस्था के अग्रदूत कवि हैं। कविता ही उनकी आत्मा की आवाज है। 'उनकी काव्य मन्दाकिनी समाज व देश को अपने प्रवाह में समेंट युग की धरा पर प्रवाहित हैं। अनुभूति लहरों के कल-कल नाद से युग की पुकार सुनाई देती हैं। काव्य मन्दाकिनी सतत प्रवाहित, न कही अटकी, न कभी रूकी। कभी प्रचण्ड रूप में हर-हर की गूज करती, तटों को बलखाती चली, तो कभी शान्त रूप में मन्थर गति से बलखाती व इठलाती चली। यही तो प्रकृति का अनमोल उपहार है।

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी ने ग्रामीण अंचल के साहित्यकारों की उन समस्याओं

का भी जिक्र किया है जिससे उन्हें जूझना पड़ रहा है। संगठन और संपर्क का अभाव, रोजी-रोटी की समस्या, ग्रामीण क्षेत्र में प्रकाशन गृहों का अभाव, साहित्यिक अभिरूचि का अभाव, प्रकाशकों द्वारा शोषण, प्रचार-प्रसार तथा प्रकाशित साहित्य की विक्री प्रोत्साहन का अभाव सरकारी नीतियों का दुष्परिणाम एवं शहरी क्षेत्र के साहित्यकारों की प्रतिस्पर्धा आदि बहुत से कारण है, जिनके कारण ग्रामीण साहित्यकार और उसका साहित्य परिस्थितियों की भीषण मार से टूटकर बिखर जाता है। परिणाम स्वरूप समाज तथा देश श्रेष्ठ साहित्य एवं साहित्यकारों की अमर वाणी से सदा-सर्वदा के लिए वंचित रह जाता है।

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी ने ग्रामीण साहित्यकारों के सम्बन्ध में सरकार और समाज से अपेक्षाएँ भी की है साथ ही सुझाव भी दिया है कि ग्राम स्तर के प्राथमिक एवं माध्यमिक व उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अनिवार्य पुस्तकालय व वांचनालय की व्यवस्था होनी चाहिए। प्रखंड और जिला स्तर पर सरकारी अनुदान से साहित्यिक गोष्ठियों, सेमिनारों का आयोजन होना चाहिए। सहकारी प्रकाशन गृहों की व्यवस्था हों, साहित्यकारों के सत् साहित्य प्रकाशित हों, सरकारी सम्मान व पुरस्कार की 75% राशि ग्रामीण अंचल के साहित्यकारों और उनकी पुस्तकों का समावेश हो। वास्तव में जब तक साहित्य तथा साहित्यकारों को योग्य मान-सम्मान देकर उनकी साहित्यिक साधना को प्रतिष्ठित नहीं किया जाएगा तब तक राष्ट्र अपनी आत्मिक उन्नति नहीं कर सकता। साहित्य कला और संस्कृति किसी भी राष्ट्र की आत्मा होती है।

गुजरात हिन्दी विद्यापीठ के मुख्य पत्रिका 'रैन बसेरा' के माध्यम से डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी ने गत् 6 वर्षो से साहित्य साधना की पृष्ठभूमि में ग्राम्यांचल का जो बिम्ब प्रस्तुत कर ग्राम्य जीवन के अछुतें प्रसंगों को उजागर कर जो दिशा प्रदान किया है वह स्तुत्य है। भारतीय समाज में व्याप्त अनेकानेक बुराइयों में चर्मोत्कर्ष पर पहुँची दहेज प्रथा के संबंध में भी डॉ. व्यथित ने चिंता व्यक्त करते

हुए कहा है कि जिस दहेज को हम दूषण समझते थे अज्ञानता वश उन्हें ही हमने आज आभूषण समझ गले का हार बना लिया। समाज में व्याप्त विभिन्न दानों में विद्यादान और कन्यादान सर्वोपरि माना गया है, तभी तो गुरू को गोविन्द से श्रेष्ठ माना गया पर कन्यादान का दाता अब कलयुगी रावण का शिकार बन गया है। कभी दाता महान और कभी निम्न होता हे। पर आज सब उल्टा ही है। देने वाले को लताड़ा जा रहा है। सब कुछ दाँव पर लगाकर बिकाऊ बैल जैसा निरीह बना उसकी इज्ज़त को धूल चटाया जा रहा है। शादी के बाजार में बिकनेवाले दुल्हों पर कवि डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी का तीखा व्यंग्य द्रष्टव्य है-

''शादी के बाजार में देखो दूल्हे कैसे बिकते हैं।''[18]

भारत गाँवों का देश है, कृषि प्रधान देश में यहाँ की 75 प्रतिशत आबादी गाँवों में रहती है। ग्राम्यांचल का कोई भी ऐसा कलम का सिपाही नहीं होगा जिसकी पैनी दृष्टि ग्राम्यांचल पर न पड़ी हो। बूँद-बूँद से सागर का अस्तित्व है और जन जन से समाज और देश का जिस प्रकार जल प्रदूषण अनेकानेक रोगों का जनक है; उसी तरह विश्व के विशालतम लोकतंत्रात्मक राष्ट्रभारत में व्याप्त प्रान्तवादेश, अलगाववाद, उग्रवाद, आतंकवाद आदि प्रदूषण से समाज और देश का प्रदूषित होना, बिखरना स्वाभाविक है। इनके खूनी पंजे से आम जनता व राष्ट्र की जो दुर्गति हो रही है उनके अधिकारों का हनन हो रहा है। लोगों के जुबान पर ताला लगा है।

आज-कल लोग दहशत की जिन्दगी जी रहे हैं। राष्ट्र और राष्ट्रीयता समाज व मानवता की अस्मिता के साथ लोकनायकों का जो खुला तांडव नृत्य हो रहा है यह सब देश के लिए अशुभ है। आज के राजनेताओं पर करारा प्रहार करते हुए डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी ने कहा है कि -''क्या स्वतंत्रता रूपी यज्ञ कुण्ड में अपने रक्त की बूँद-बूँद आहुति देनेवाले राष्ट्रभक्तों का भारत ऐसा ही होगा, जैसा आज है? यदि नहीं तो देश की भोली-भाली जनता की आहुति क्यों? इस प्रकार राष्ट्रीय

जागरण का भी अमर सन्देश आपने अपनी लेखनी से दिया है और भारतीय पुरातन संस्कृति की व मानवीय अस्मिता की रक्षा को ही अपना धर्म बताया है - **'जननी जन्म भुमिश्च स्वर्गादऽपि गरीयसी'** का भाव रखकर ही सेवा का व्रत लेना होगा।''[19] ऐसे ही संकल्प के सहारे सदियों तक परतंत्रता के दारूण संताप से मुक्ति मिली थी। सत्य अहिंसा के बीज मंत्र का शंखनाद हुआ था। देश भक्तों की कुर्बानी को याद रखना ही होगा। कोरे आर्दश के काल्पनिक महल से निकलकर यथार्थ की झोपड़ियों में वास करना ही होगा। जन-जन के दु:ख-दर्द को अपना दर्द समझना होगा। इस प्रकार आम जन मानस में व्याप्त नैराश्य को विश्वास का मजबूत अटूट संबल देने के प्रेरणास्पद साहित्य से डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी ने कर्तव्य का जो निर्वाह किया है, वह विरले साहित्यकारों में ही संभव है।

सभ्यता और संस्कृति के साथ-साथ डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी के सामने आज के समाज में सुरक्षा की तरह मुँह बाये भ्रष्टाचार, अत्याचार, अनाचार, लूट-खसोट, तस्करी, काला बाजारी, धार्मिक, असहिष्णुता, आतंकवाद, साम्प्रदायिकता, नारी शोषण, उत्पीड़न, बलात्कार और देश में पनपते पूँजीवाद के माध्यम से फूलती-फलती अपसंस्कृति जो हमारे सामने आज के यक्ष प्रश्न की तरह टंगे हुए हैं। विभिन्न आलेखों के माध्यम से लेखक ने इन पर करारा प्रहार किया है। **'आज के युग का यक्ष प्रश्न'** में आधुनिकता के मद में डुबकर अपनी जमीन को छोड़ने वाली मानसिकता पर करारा व्यंग्य किया गया है तो **'आस्था के डगमगाते कदम'** और **'चारित्रिक प्रदूषण से और समाधान'** में गिरते हुए नैतिक मूल्यों और चारित्रिक प्रदूषण से मुक्त होने की दिशा में कुछ कारगर कदम उठाने की पेशकश की गयी है। आज के आधुनिक शिक्षा ने हमारे पूरे समाज को परिवार की नयी परिभाषा देकर युगीन परम्पराओं से चलते आ रहे संयुक्त परिवार को नकारा है। जिसने हमारी मूलभूत **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** की अवधारणा को ठेस पहुँचायी है, हमारे जीवन मूल्यों को छिन्न-भिन्न किया है। इस पर भी लेखक ने प्रहार किया है।

आज हमारे जीवन हमारे समाज को जिस चीज ने सर्वाधिक प्रभावित किया है वह है राजनीति। जीवन का हर क्षेत्र इसके प्रभाव से प्रभावित है। राजनीति के अपराधीकरण के पश्चात जीवन के हर क्षेत्र में उच्छृंखतता आई है। आर्थिक-सामाजिक, शैक्षिक, कार्यालयी यानी सब जगह उसका प्रभाव पड़ा है। लेखक ने अपने कई निबंधों, धर्म, राजनीति, और संत, राजनैतिक पार्टियाँ और जनता, 'राजनैतिक विषबेली', 'वोट और आरक्षण की राजनीति' एवं 'लोकतंत्र' के संदर्भ में चुनाव' में भारतीय राजनीति के गिरते चरित्र, भारतीय मानस में पनपती कट्टर जातीयता और येन केन प्रकारेण सत्ता हस्तक करने की कुप्रवृति की तरफ इशारा करते हुए अपने स्वस्थ सुझाव भी प्रकट किए है।'राजनैतिक विषवेलि' निबंध में तो उन्होंने आजादी की पचासवीं वर्षगाँठ पर देश को सौगात में मिले। भाई-भतीजेवाद, वंशवाद से लेकर पत्नीवाद तक पर प्रहार की है। साथ ही भ्रष्टाचार माफियों, आतंकवाद को संरक्षण प्रदान करने वाले राजनैतिकों को भी बड़ी फटकार लगाई है।

आज के वैज्ञानिक और आधुनिक जीवन में जब वैज्ञानिक आविष्कारों ने साहित्य को समाज के हाशिए पर लाकर खड़ा कर दिया है। व्यथित जी ने इन माध्यमों के विरुद्ध अभियान छेड़ते हैं तथा परम्परागत लोक साहित्य-लोकनाट्य, लोकगाथा, लोकगीतों को फिर से अपनाने की अपील करते हैं। जिनमें हमारी भारतीय संस्कृति और हमारा इतिहास सुरक्षित है। इसके साथ ही वे दलित साहित्य की चर्चा भी करते है। 'दलित साहित्य की परिकल्पना' निबंध में आज साहित्य को बाँटने की जो राजनीति चल रही है उसे फटकारते हुए **डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी कहते** हैं- ''राजनीति के पक्षा-पक्षी पचड़े में पडकर साहित्य को कीचड़ में घसीटने वाले तथाकथित साहित्यकारों के दलित साहित्य के भ्रामक विचार से हमें बचना है।''[20] साहित्य को वे सिर्फ समाज के हित के लिए मानते हैं। उनकी परिकल्पना में साहित्य वह उर्ध्वगामी चिन्तन ही चेतना है जो सत्यम्,

शिवम्, सुन्दरम् और वसुधैव कुटुम्बकम् की कल्पना से पूरित है। इसके साथ ही आज के आधुनिक साहित्य की विद्याओं पर भी व्यथित जी की पैनी दृष्टि रही है। आजादी के बाद हिन्दी राष्ट्रभाषा घोषित हुई किन्तु वह अपने अधिकार से आज तक वंचित रही। इसकी पड़ताल **'हिन्दी दिन या दीन हिन्दी'**, **'हिन्दी का दुश्मन कौन'** तथा **'अंग्रेजी का पलीत और राष्ट्रभाषा हिन्दी'** जैसे निबंधों में किया गया है।

अभिनन्दनीय का अभिनन्दन न करना सामाजिक दायित्व के प्रति अनवधानता का सूचक है। धर्म, समाज, सेवा, साहित्य और कला के क्षेत्र में ही नहीं, राजनीतिक्, वैज्ञानिक और औद्योगिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण और अविस्मरणीय उपलब्धि प्राप्त करने वालों का अभिनन्दन करना सामाजिक भावना की परिपक्वता और राष्ट्रीय चेतना की सजगता का द्योतक है। दुर्भाग्यवश वर्तमान भारतीय समाज में स्वार्थ-साधन एवं चाटुकारिता की प्रवृत्ति इतनी प्रबल हो गई है कि राजनीतिज्ञों, उद्योगपतियों यहाँ तक की असामाजिक तत्वों का तो डंके की चोट पर सार्वजनिक अभिननन्दन किया जाता है, परन्तु साहित्कारों, कलाकारों और समाज के प्रति समर्पित सेवियों की ओर किसी का ध्यान ही नहीं जाता। जो मनीषी, विद्वान, कवि, कलाकार, और समाज-सेवी अपनी संस्कृति और समाज के उत्थान के लिए अपना सर्वस्व होम कर देश और समाज को महत्वपूर्ण अवदान देते हैं, उन्हें यह प्रतीति होती चाहिए कि समाज इनके अवदान के प्रति कृतज्ञ है। वस्तुत: ऐसे ही महापुरुष अमरत्व के अधिकारी होते हैं और देश के इतिहास में स्थान प्राप्त करतें हैं। अत: वे ही समाज द्वारा सन्मानित और अभिनन्दित होने के सच्चे अधिकारी हैं। ऐसे लोगों का अभिनन्दन करना समाज का नैतिक दायित्व है।

अगले अध्याय में हम उनके काव्य की विस्तृत काव्य समीक्षा प्रस्तुत कर रहे है, जिससे साहित्य के मानदंड़ो पर उनके कृतित्व को परखा जा सके।

संदर्भ-सूची

1. प्रधान संपा-डॉ. कृष्णकुमार सिंह ठाकुर - डॉ. जयसिंह 'व्यथित' अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-2/5.
2. प्रधान संपा-डॉ. कृष्णकुमार सिंह ठाकुर - डॉ. जयसिंह 'व्यथित' अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-2/36.
3. प्रधान संपा-डॉ. कृष्णकुमार सिंह ठाकुर - डॉ. जयसिंह 'व्यथित' अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-2/41.
4. प्रधान संपा-डॉ. कृष्णकुमार सिंह ठाकुर - डॉ. जयसिंह 'व्यथित' अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-2/41.
5. प्रधान संपा-डॉ. कृष्णकुमार सिंह ठाकुर - डॉ. जयसिंह 'व्यथित' अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-2/42.
6. प्रधान संपा-डॉ. कृष्णकुमार सिंह ठाकुर - डॉ. जयसिंह 'व्यथित' अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-2/43.
7. प्रधान संपा-डॉ. कृष्णकुमार सिंह ठाकुर - डॉ. जयसिंह 'व्यथित' अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-2/43.
8. प्रधान संपा.-डॉ. कृष्णकुमार सिंह ठाकुर - डॉ. जयसिंह 'व्यथित' अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-2/43.
9 प्रधान संपा.- डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी - रैन बसेरा, जनवरी 1998 के सम्पादकीय से
10. प्रधान संपा.- डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी - रैन बसेरा, जून-1998 के सम्पादकीय से

11. प्रधान संपा.- डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-रैन बसेरा, जुलाई-1998 के सम्पादकीय से

12. प्रधान संपा-डॉ. कृष्णकुमार सिंह ठाकुर - डॉ. जयसिंह 'व्यथित' अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-2/121

13. प्रधान संपा-डॉ. कृष्णकुमार सिंह ठाकुर - डॉ. जयसिंह 'व्यथित' अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-2/148

14. प्रधान संपा-डॉ. कृष्णकुमार सिंह ठाकुर - डॉ. जयसिंह 'व्यथित' अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-2/148

15. डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी - नेताजी (खण्ड-काव्य), पृष्ठ -31

16. प्रधान संपा- डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी (रैन बसेरा, अगस्त-1996 से)

17. प्रधान संपा-डॉ. कृष्णकुमार सिंह ठाकुर - डॉ. जयसिंह 'व्यथित' अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-2/237

18. प्रधान संपा-डॉ. कृष्णकुमार सिंह ठाकुर - डॉ. जयसिंह 'व्यथित' अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-2/1250

19. प्रधान संपा-डॉ. कृष्णकुमार सिंह ठाकुर - डॉ. जयसिंह 'व्यथित' अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-2/251

20. प्रधान संपा-डॉ. कृष्णकुमार सिंह ठाकुर - डॉ. जयसिंह 'व्यथित' अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-2/357